शीआ पर्सनल लॉ बोर्ड के माडल निकाहनामे का असल मॉख़ज़ (लेकिन अफ़सोस कि फिर भी समझने और समझाने में हज़राते केराम से ग़लती हो गई)

मारो घुटना फूटे आँख

क़रीब 74 साल पहले सरकार सय्यिदुल उलमा (रह0) ने मदरसतुल वाएज़ीन के बयानों में इस मसले की तरफ उलमा व मोमिनों को ध्यान दिलाया था कि औरतों की मुश्किलों को ध्यान में रखते हुए यह ज़रूरी है कि निकाह के वक़्त बीवी को तलाक़ की वकालत का हक़ दे दिया जाए फिर काफी अरसे बाद अल्लामा ने 13 दिसम्बर 1957 ई0 को मुजाहिदे मिल्लत सै0 इब्ने हुसैन नक़वी के बेटे का निकाह, सीग़ों में ''बिश्शरतिल मालूम'' और तौकील (वकील होना) के सीग़ों के इज़ाफे के साथ पढ़ ही दिया। निकाह से पहले तक़रीर में सय्यिदुल उलमा ने फरमायाः

तलाक़ की वकालत की शर्तें

''अगर शौहर एक साल तक बिना किसी वजह के खाना–कपड़ा न दे, चाहे उस शहर में रहकर चाहे यहाँ से किसी दूसरी जगह चले जाने पर, बीवी के साथ बदसुलूकी जैसे मार–पीट या ऐसी सख़्त बातें, जो गाली गलौज में दाख़िल हो, और जो ग़ैर शरीफाना सूरत रखती है तो बीवी को हक़ होगा कि वह शौहर की तरफ से वकील की हैसियत से ख़ुद या किसी को वकील बनाकर और दो आदिल गवाहों की मौजूदगी में तलाक़ का सीग़ा जारी करके तलाक़ हासिल कर ले।''

इस तरह की शर्तें पहले से दोनों तरफ से तै हो जाना चाहिएँ यह शर्तें दोनों तरफ की मर्ज़ी से पहले से तै हो जाना चाहिएँ ताकि अक़्द के वक़्त इन शर्तों का हवाला 'शर्तिल मालूम' की लफ्ज़ से दे दिया जाए।

तौकील का सेग़ा

बेहतर यह है कि अक़्द के बाद एक शख़्स निकाह करने वाले से तौकील के सीग़े को जारी करने की इजाज़त ले ले और दूसरा शख़्स औरत की तरफ से तौकील के क़बूल करने का वकील हो जाए, फिर

मर्द का वकील कहेः वक्कलतु फुलानतन फित्तलाक़ि अन्नी बिनफ़्सिहा औ बिवकीलिहा बिश्शर्तिल मालूम।''

औरत का वक़ील कहेः क़बिल्तुत्तौकी–ल लिमुवक्किलती बिश्शरतिल मालूम।

''कहीं पर नज़र है कहीं पर निशाना'' वाले हज़रात ने जब ''माडल निकाहनामा'' पेश किया तो माख़ज़ (स्रोत) से थोड़ा अगल–थलग रहने के चक्कर में एक भारी ग़लती कर बैठे यानि यह कहने के बजाए कि निकाह के वक़्त बीवी तलाक़ की वकालत का हक़ हासिल करके फाएदा उठाए। बल्कि यह फरमा दिया कि औरत, 'ख़ुलअ' से हट के मर्द को तलाक़ दे सकती है और हद है कि आयतुल्लाह सीस्तानी पर भी इल्ज़ाम लगा दिया कि उन्होंने भी इस बात की हिमायत कर दी है।

ब ई अक़्लो दानिश बबायद गिरीस्त
(इस अक़लमन्दी पर रोना चाहिए)

असीफ जाएसी

20 नवम्बर 2006ई0—28 शव्वाल 1427 हि0

तआरुफ़

यह रिसाला सरकार सय्यिदुलउलमा मद्दाज़िल्लहू के उस बयान का खुलासा है जो ममदूह ने मस्जिद वाके बाग़ जनाब जन्नत मआब ताबा सराह में 20 जमादिल अव्वल 1377 हि0 मुताबिक़ 13 दिसम्बर 1957 ई0 जुमे के दिन उस मौक़े पर इरशाद फरमाया कि जब मेरे बेटे सै0 काज़िम हुसैन नक़वी सल्लमहू का अक़्द जनाब सै0 मुस्तफा हसन साहब रिज़वी एडिटर सरफराज़ की बेटी सल्लमहा के साथ हो रहा था।

चूँकि हिन्दुस्तान में हर तरह से अपनी तरह का शायद यह पहला अक़्द था जिसमें शौहर की तरफ से बीवी को तलाक़ की वकालत का हक़ भी दे दिया गया है इसलिए अख़बारों में इस तक़रीब के हालात शाए होने के बाद से मुबारकबाद के ख़तों के साथ अक़्द के जुमलों वग़ैरा की तफसील माँगी जा रही हैं। इसलिए इस नसीहत के साथ उन मालूमात को भी शामिल कर दिया गया है।

काश! मिल्लत के लोग इस मिसाल से पूरा–पूरा फाएदा उठाएँ।

अद्दाओी इलल ख़ैर

सै0 इब्ने हुसैन नक़वी अफा अन्हु

आनरेरी सिक्रेटरी इमाममिया मिशन लखनऊ

जमादिस्सानी 1377 हि0

जनवरी 1958 ई0

शादी का निज़ाम (सिस्टम)

आयतुल्लाहिल उज़मा सरकार सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी ताबा सराह

यह पैदा करने वाले की नज़र में शादी के निज़ाम की अहमियत है कि जिस तरह आसमान की पैदाईश को वह अपनी आयत यानी क़ुदरत की निशानी बताता है, जिस तरह आफताब व माहताब और पूरे फलकी निज़ाम को अपनी आयत क़रार देता है, जिस तरह घटाओं के आने जाने और उनकी बारिशों को वह अपने आयात में हिसाब करता है और ख़ुद इंसान की ख़िलक़त को अपनी सबसे बड़ी आयत के तौर पर बयान फरमाता है जिसके लिए क़ुर्आने मजीद में बहुत सी आयतें आई हैं। इसी तरह इस क़ुर्आनी आयत में वह शादी के निज़ाम को भी अपनी क़ुदरत की एक ख़ास आयत की हैसियत से पेश फरमा रहा है। इरशाद होता है कि इसकी क़ुदरत की निशानियों में से एक यह है कि उसने तुम्हारे लिए ख़ुद तुम ही में से जोड़े पैदा किये ताकि तुम सुकून व भरोसे के साथ उनकी तरफ झुको। और तुम्हारे बीच मेल व मुहब्बत पैदा कर दी। "पैदा किये" की लफ्ज़ से यह भी ज़ाहिर है कि शादीशुदा ज़िन्दगी का छोड़ना पैदाईश के मक़सद के ख़िलाफ है जो रूहबानियत (दुनिया छोड़ने और शादी न करने) के ख़याल पर गहरी चोट है। और इसमें अच्छे ढंग से उस मशहूर अवामी कहावत की असल भी छुपी हुई मालूम होती है। अवाम कहते हैं कि "बर" आसमान से उतरता है। मिन अनफुसिकुम (तुम ही में से) इसकी सराहत क़ुर्आने मजीद की दूसरी आयतों में भी है। यह उस बहस का हल है जो मुद्दतों ज़माने के अक़लमन्दों के बीच जारी रही है कि औरत भी इन्सानों की

प्रजाति (Species) में दाख़िल है या नहीं? कुर्आन कहता है कि वह कोई और नहीं बल्कि तुम्हारे नफ्सों (जानों) का एक हिस्सा है, इतना ही उसके हुक़ूक़ का एहसास पैदा कराने के लिए काफी है लेकिन मज़ीद यह है कि इस दूसरे सेक्स के लिए 'अज़वाज' की लफ्ज़ लगाई है।

सिलसिल–ए–अनसाब (वंश–क्रम) में जिस तरह भाई का बस एक रिश्ता है जो बीच में (दोनों तरफ से) एक होता है यानि यह उसका भाई तो वह भी इसका ही भाई है, कोई और नहीं है और जब रिश्ता दोनों में एक हो तो हुक़ूक़ व फराएज़ (अधिकार और कर्तव्य) में भी बराबरी होना चाहिए। सिलसिल–ए–असबाब में इस तरह की चीज़ ज़ौजियत है यानी हमारी ज़बान में मियाँ–बीवी और शौहर–ज़ौजा दो नाम बोले जाते हैं मगर कुर्आनी शब्दों में जिस तरह मर्द अपनी बीवी के लिए ज़ौज है उसी तरह औरत अपने शौहर के लिए ज़ौज की हैसियत रखती है। वह एक ही रिश्ता है जो दोनों तरफ से क़ाएम है, और इस ज़ौजियत (वर होने में) में दोनों की बराबरी के दर्जे की अहमियत छुपी हुई है। ज़ौज कौन होते हैं? वह दो जिनका एक साथ होना एक मक़सद के पाने के लिए ज़रूरी हो, जैसे दरवाज़े के दो पट या इंसान की दो आँखे या बिजली के मुस्बत व मन्फी (Positive & Negative) तार। इनमें से हर एक दूसरे का जोड़ा है, इसी तरह पैदा करने वाले ने मियाँ और बीवी को 'जोड़े' बनाया है। अब इनमें से किसी को यह हक़ नही है कि वह दूसरे की अहमियत का इन्कार करे। और इस हैसियत से उसे कम समझे। बेशक! अपनी सिन्फी (लिंग/Gender की) ख़ुसूसियत के लेहाज़ से हर एक की ख़ूबियाँ अपने एतेबार से होना चाहिएँ हैं। जिस तरह मुस्बत (Positive) तार का यह कमाल नहीं है कि उसमें मन्फी (Negative) की ख़ूबियाँ पैदा हों और मन्फी का यह कमाल नहीं है कि इसमें मुस्बत की ख़ुसूसियत पैदा हो जाए। ऐसा होना नतीजा पाने के लिए नुक़सान देने वाला होगा। इसी तरह मर्द की तरक़्क़ी यह नही है कि इसमें औरत की ख़ुसूसियतें पैदा हो जाएँ, और औरत की ख़ूबी यह नहीं हो सकती कि उसमें मर्दानी बातें नज़र आने लगें, बल्कि मर्द का कमाल अपनी ख़ूबियों की तरक़्क़ी से और औरत का कमाल अपने औरतपन के बढ़ने से जुड़ा है। इसीलिए इस्लामी शरीअत ने नमाज़ तक के अहकाम में दोनों के बीच फर्क़ रखा। कपड़ों में फर्क़, खड़े होने के अन्दाज़ में फर्क़, सजदे की शक्ल में फर्क़, बैठने के तरीक़े में फर्क़, सजदों के बाद खड़े होने में फर्क़, धीरे व ज़ोर से पढ़ने में फर्क़, यह सब काहे के लिए है? इसीलिए कि उसे मर्द होने का एहसास रहे, और उसे औरत होने का।

चूँकि यह दोनों सिन्फें (लिंग/Gender) जिस्मानी ताक़तों में खुली हैसियत से फर्क़ रखती हैं और इसीलिए हमारी नई बोल–चाल में भी उनमें से एक को सिन्फे नाज़ुक और सिन्फे लतीफ (Fair Sex) कहा जाता है, इसलिए फितरत का तक़ाज़ा यह है कि उनके फ़रीज़े भी उनकी बर्दाश्त की ताक़त के लेहाज़ से हों। इसलिए रोज़ी कमाने की ज़िम्मेदारी इस्लाम ने मर्द पर डाली और इसे बीवी के ख़र्च का ज़िम्मेदार ठहराया है और इसके जिस्म, जान इज़्ज़त का रखवाला बनाया जिसमें कभी–कभी हमला करने वाली ताक़तों और ज़माने की खींचातानियों का भी मुक़ाबला करना पड़ेगा। इस ज़रूरत से उसने एक हद तक औरत को उसकी मर्ज़ी का पाबन्द (बाध्य) बनाया। अगर जहाँ वह रहे वहाँ वह रहे ही न और जहाँ वह मना करे वहाँ जाने में कोई रुकावट न महसूस करे तो फिर मर्द, उसकी इज़्ज़त व आबरू की हिफाज़त ही क्यों कर

कर सकता है। जो शख़्स किसी भी महकमे का निगराँ (Supervisor) हो, उस महकमे में यक़ीनन उसकी बात चलना और उसका हुक्म लागू होना चाहिए। इसलिए यही दायरा (Circle) वह है जिसमें यह कहना सही है कि मर्द की बात पर चलना बीवी पर वाजिब (ज़रूरी) है वरना दूसरे मामलों में यहाँ तक कि घर के कारोबार और अपनी ज़ाती ज़रूरतों में मर्द को यह हक़ नहीं है कि वह हुकूमत की तरह औरत से नौकर की तरह काम ले। घर का खाना पकाना या झाड़ू देना या कपड़े वग़ैरा का ठीक करना इन सब चीज़ों को मुहब्बत के उसूल से पूरा होना चाहिए। अगर एक घर में माँ और बेटा यह दोनों रहते हों तो ज़ाहिर है कि जब बेटा रोज़ी कमाने के लिए जाएगा तो घर का काम माँ पूरा करेगी। मगर इसके माने यह तो नहीं हैं कि बेटे की इताअत इस मामले में माँ पर फर्ज़ हो गई। इसी तरह जब मियाँ–बीवी हों, और शौहर रोज़ी कमाने के लिए जाए तो घर के अन्दर के काम बीवी ही को पूरा करना चाहिएँ। यह ठिकाने की ज़रूरतों के मातहत एक शरीफाना आपसी समझौता है। इसे इताअत (आज्ञा मानना/Obedience) कहना ग़लत है। बेशक मियाँ–बीवी के फाएदों से मुताल्लिक़ मामले, इज़्ज़त बचाने के बारे में जो पाबंदियाँ हैं वह इतनी सख़्त हैं कि औरत किसी सैर–सपाटे की जगह का ज़िक्र क्या, अपने माँ–बाप की अयादत (बीमारी में देखभाल) या जनाज़े में शामिल होने के लिए भी बिना शौहर की मर्ज़ी के नहीं जा सकती, और घर में किसी को बुला नहीं सकती, यहाँ तक कि शौहर अगर सगे भाई बल्कि बाप को रोक दे तो उसे बुलाना हराम होगा। लेकिन इसके मुक़ाबले में औरत के शादी वाले हुकूक को पूरा करने के लिए मर्द भी बिलकुल आज़ाद नहीं है। वह चार रातों तक बराबर बिना बीवी की मर्ज़ी के ग़ायब नहीं रह सकता। कोई लम्बा सफर बिना उसकी मर्ज़ी के नहीं कर सकता। यह और बात है कि उसे हमारी बोल–चाल में इताअत नहीं कहते। मगर नामों से असलियत तो नहीं बदलती। वाक़ेआ तो यह मालूम होता है कि किसी एक की इताअत भी अपने से दूसरे पर नहीं है बल्कि दोनों एक सबसे बड़ी ताक़त, काएनात के पैदा करने वाले की तरफ से क़ानून के पाबन्द हैं। जितना उसने ज़रूरी जाना, उसे पाबन्द बनाया, और जितना ज़रूरी समझा, इसे पाबन्द ठहरा दिया। इन दोनों को उसकी इताअत लाज़िम है। चूँकि मियाँ–बीवी में एक तरह की बराबरी ज़रूर पाई जाती है, इसलिए शरीअत (धर्म के क़ानून) ने उनमें कुफ़ुवियत यानी बराबर का होना ज़रूरी समझा है, मगर याद रहे कि इस्लाम में ऊँच–नीच का ख़याल हसब–नसब (ख़ानदान) के मेयार पर नहीं है तो इस शरीअत में बराबरी होने का भी ख़ानदानी ख़याल नहीं रखा गया। यहाँ कुफ़ुवियत इसी मेयार की है जिस मेयार की ऊँच–नीच है यानि ''इन्ना अकरमकुम इन्दल्लाहि अत्क़ाकुम'' (तुममें खुदा के नज़दीक ज़्यादा इज़्ज़त वाले वे हैं जो [ख़ुदा से] ज़्यादा डरते हैं)। एक दर्जा कुफ़ुवियत का तो वह है जो शौहर और बीवी दोनों तरफ से सही है, और वह इस्लाम है, शिर्क के मुक़ाबिल में। जिस तरह औरत मुसलमान हो तो उसकी शादी किसी शिर्क करने वाले के साथ किसी तरह की भी नहीं हो सकती। इसी तरह मुसलमान मर्द की शादी शिर्क करने वाली औरत के साथ किसी रूप में भी ठीक नहीं है। और इसी तरह ग़ैर मुश्रिक, कोई भी तरह का काफिर हो तो दाएमी (स्थायी) निकाह में वह दोनों तरफ से बाधा बनने वाला है। इसके बाद चूँकि खाने और ख़र्च की ज़िम्मेदारी और इज़्ज़त की हिफाज़त वग़ैरा के लेहाज़ से बहरहाल एक तरह की बड़ाई मर्द को

होती ही है और इसलिए भी कि वह पैदाईशी ताक़तवर सिन्फ (प्रौढ़/Gender) है और फिर इस दुनिया में यह क्यों यक़ीन किया जाए कि हर एक हक़ों का पाबन्द ही रहेगा इसलिए अमल से वह अपनी जिस्मानी ताक़तों की बुनियाद पर हद से आगे भी जा सकता है, इसलिए लड़की के लिए शौहर के चुनने में कुफ़ु(वर) का मेयार इससे ज़्यादा बढ़ गया जितना लड़के के लिए बीवी की तलाश (खोज) में है।

इसलिए जाफरी फ़िक़्ह (धर्मविधि शास्त्र) में अहले किताब औरत के साथ दाएमी निकाह तो नहीं हो सकता लेकि ख़त्म हो जाने वाले निकाह जिसका क़ानून ही ज़रूरत के ख़ास मौक़ों को देखते हुए बनाया गया है, किताबिया औरत के साथ जाएज़ है जबकि मुश्रिका के साथ किसी सूरत से जाएज़ नहीं। और इसके उलटे यानी लड़की का अक़्द अहलेकिताब के साथ किसी शक्ल में भी ठीक नहीं। यह इसका सुबूत है कि किफायत (वर) का मेयार (मानक/Standard) उधर से ज़्यादा सख़्त है। दूसरा गवाह इसका यह है कि मुसलमानों के मुख़तलिफ फिरक़ों में अगर मर्द मज़हबे हक़ (सच्चे मज़हब) का मानने वाला है तो बीवी के लिए कोई पाबन्दी लाज़मी नहीं है कि वह किस फिरक़े की हो लेकिन लड़की अगर शीआ हो तो शौहर को भी शीआ होना चाहिए और इसके ख़िलाफ हो तो बहुत से उलमा के नज़दीक अक़्द बातिल (ग़लत) है। यह दूसरा गवाह है उधर से किफायत के हुक्म की शर्त का। इसी वजह से मासूमीन के यहाँ बीवी के चुनने में इतना सख़्त मेयार सामने नहीं रखा गया मगर लड़की के लिए शौहर के चुनने का मसला इतना सख़्त था कि पिछली उम्मतों में एक मासूमा जो पैदा हुई यानि हज़रत मरियम (अ0) तो चूँकि उनके बराबर वाला कोई मासूम उस वक़्त ऐसा न था तो कुदरत ने फितरत के आम उसूल को तोड़कर बिना किसी मर्द के उन्हें ईसा (अ0) ऐसा बेटा अता (प्रदान) फरमा देना ज़रूरी समझा मगर शादी उनकी किसी के साथ पसन्द नहीं की। खुदा को आख़री रसूल हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) के लिए उनकी रिसालत के मफाद (हित) को पूरा करने के मक़सद से इस्मते कामिला (पूरा–पूरा मासूम होने) के मेयार की एक बेटी देना ज़रूरी था, तो इसके लिए हज़रत अब्दुल मुत्तलिब के वक़्त से एहतेमाम करके एक नूर के दो टुकड़े किये ताकि फातिमा (स0) के पहले रसूल (स0) के पास अली (अ0) मौजूद हों जिनका रिश्ता सय्यिद (स0) के साथ हो सके। इस बुनियाद पर पैग़म्बर (स0) ने यह नहीं फरमाया कि: ''लौ ला फातिमतु लम यकुन कुपुवन लिअलिय्यिन'' यानी अगर फातिमा (स0) न होती तो अली (अ0) का कोई कुफ़ु न होता। यह क्योंकिर फरमाते अगर वह किफायत जो इस्लाम में ज़रूरी है न होती तो अली बिन अबी तालिब(अ0) जनाबे फातिमा (सालमुल्लाहि अलैहा) के बाद भी उम्मुल बनीन वग़ैरा से क्यों अक़्द फरमाते। बेशक यह फरमाया कि: ''लौ ला अलिय्युन लम यकुन कुफ़्वन लिफातिम–त आदमु वमन दूनहु'' (अगर अली (अ0) न होते तो फातिमा (स0) को कोई कुफ़ु (वर) आदम (अ0) से लेकर इस वक़्त तक न था।) यह कुफ़ुवियत ख़ानदान के एतेबार से हरगिज़ न थी वरना अली (अ0) के जितने भाई थे वह सब नसबी ख़ुसूसियत में एक जैसे थे। तालिब व अक़ील व जाफ़र सब अमीरुलमोमिनीन के सगे भाई थे। अलग–अलग माँ से भी न थे कि माँ के एतेबार से नसब में फर्क हो सकता। यह ख़याल भी ग़लत है कि तालिब और जाफर वग़ैरा चूँकि उम्र में सय्यिद–ए–आलम (स0)से बहुत ज़्यादा (बड़े) थे इसलिए बहस से बाहर ठहरा दिये गए

इसलिए कि हदीस में आख़िर में ''आदमु वमन दूनहु'' का जुमला बताता है कि इस में उम्र का क्या ज़िक्र सदी और क़र्न और हज़ारों साल के फर्क़ का भी लेहाज़ नहीं है और पूरी दुनिया की उम्र के इंसान पैग़म्बर (स0) के सामने हैं। इस सूरत में मानना पड़ेगा कि यह कुफ़ुवियत बड़ाई और सिफतों (अच्छाइयों) और ईमान के मरतबे के हिसाब से है।

अब ज़ाहिर है कि ऐसी इज़्ज़त वाली और अज़ीज़ बेटी के अक़्द में बाप का दिल क्या कुछ नहीं चाह सकता कि इस अक़्द को किस शान शौकत और तड़क–भड़क के साथ किया जाए। मगर तारीख़ (इतिहास) व हदीस के पन्ने अपने दामन में अक़्द की पूरी तस्वीर लिये हुए हैं कि वह किस तरह हुआ। इतना तो ज़रूर लेहाज़ रखा गया कि पैग़ाम अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की ज़बान से हो और यह हक़ीक़त में औरत की ख़ुद्दारी (स्वाभिमान) को बचाए रखना था कि चाहने वाला ताक़तवर सिन्फ यानी मर्द होना चाहिए और दूसरी सिन्फ की फर्द (इकाई) को ज़रूरत रखने वाला (ग़र्ज़ू) नहीं साबित होना चाहिए। हाँ! जब अली इब्ने अबी तालिब (अ0) हाज़िर हुए और बन्द अन्दाज़ में रिश्ता माँगा तो रसूल (स0) ने बे ठिटक इरशाद फरमाया कि यह तो तुम अब कह रहे हो और ख़ुदा अर्श पर इस मसले को तय फरमा चुका है। मालूम होता है कि यहाँ दामाद का चुना जाना तक रसूल (स0) की ज़ाती राय से न होता था बल्कि वह ख़ुदा का चुना हुआ होता था। बस अब तकल्लुफ व रसमों को किनारे करते हुए रसूल (स0) फरमाते हैं: ''ऐ अली (अ0) तुम्हारे पास दुनिया के माल में क्या है?'' अर्ज़ करते हैं, ''हुज़ूर को मालूम है। बस एक घोड़ा है, एक तलवार है और एक ज़िरह (कवच), इसके सिवा कुछ नहीं।'' फरमाया, ''घोड़े और तलवार की तुम्हें ख़ुदा के रास्ते में जिहाद के लिए ज़रूरत है, मगर ज़िरह की ज़रूरत नहीं है इसे बेच दो।'' अली इब्ने अबी तालिब (अ0) ने उसे बेच दिया जिससे चार सौ दिरहम (चाँदी के सिक्के) क़ीमत (मूल्य) मिली। यह ही हज़रत सय्यिद (स0) का महेर ठहरा। और इस रक़म से जनाबे रिसातलत मआब (रसूल स0) ने नये घर के लिए गृहस्थी का सामान ख़रीद कर बेटी और दामाद के ज़िन्दगी गुज़ारने का सामान कर दिया और इस तरह इमामुल मुत्तक़ीन (अल्लाह से डरने वालों के प्रमुख/नेता) की शादी सय्यिदतु निसाइल आलमीन (जगनारी मुखिया) (स0) के साथ मुकम्मल हो गई।

अफसोस है कि हम लोगों ने रस्मों और बन्धनों में घिरकर इस बेहतरीन सुन्नत (सदावृत्ति) को सामने न रखा जो पैग़म्बरे इस्लाम (स0) ने पेश फरमाया था। मुबारकबाद के क़ाबिल हैं जनाब सै0 इब्ने हुसैन साहब नक़वी कि इन्होंने अपने यहाँ की पिछली शादियों में भी इन ख़ुसूसियतों को नज़र के सामने रखा और एक ख़ास चीज़ तो महेर की है जिसमें हमारे यहाँ आम तौर से इतनी ज़्यादती कर दी जाती है कि कभी–कभी अक़्द के सही होने में इश्काल (शुबहा) पैदा हो जाने का इम्कान (सम्भावना) है। अगर फातमी महेर को सामने रखा जाए तो यह सूरतें कभी न पैदा हों। मगर फातमी महेर के लेहाज़ से पहले जो एक सौ सात रुपया रखा जाता था वह अब ठीक नहीं रहा क्योंकि 'शरआी दिरहम' चाँदी के एक मिस्क़ाल का होता था अब रुपये में चाँदी जैसे ख़त्म हो जाने की वजह से वह हिसाब ग़लत हो गया है। जैसा कि ज़कात के निसाब वग़ैरा के हिसाब में भी जो जनाब ग़ुफ़रानमआब (अअ्लल्लाह मक़ामहु) के समय से चल रहे थे अब ठीक नहीं रहे हैं। ज़ाहिर है कि यह हिसाब लगाना कि मौजूदा रुपये में कितनी मिक़दार (मात्रा) भर चाँदी है और

इस हिसाब से रुपयों की गिनती तय करना बहुत मुश्किल है, इसलिए अब सही सूरत यह है कि चाँदी का इतना वज़न महेर में रखा जाए जो जनाबे सय्यिदा (स0) के महेर के बराबर हो। इसलिए इस अक़्द में शायद पहली बार यह मिसाल (उदाहरण) बनायी जा रही है कि यहाँ महेर एक सौ सत्तरा तोला चाँदी तय हुआ है। फातमी महेर जब तय करना हो तो यही सूरत अब ज़्यादा ठीक मालूम होती है।

दूसरी बड़ी अहम बात यह है कि इस ज़माने में घरेलू ताल्लुक़ात (सम्बन्ध) अकसर ख़राब दर्जे पर पहुँचा जाते हैं। ऐसा भी होता है कि शौहर बीवी को छोड़ कर चला गया और खाने–कपड़े की कोई ख़बर नहीं लेता। पाकिस्तान बन जाने के बाद ऐसा बहुत हो गया है कि शौहर पाकिस्तान चला गया और बीवी यहाँ रह गई। ऐसी सूरतों में लोग उलमा के पास आकर फरयादें करते हैं और ज़्यादा तर इस बारे में उलमा बेबसी महसूस करते हैं। इसके लिए मैंने बीस पच्चीस साल पहले मदरसतुल वाएज़ीन के बयानों में से एक बयान जो इमामिया मिशन लखनऊ से किताब की सूरत में छप चुके हैं इस सूरत पर ध्यान दिलाया था कि शरीअत के आम क़ानूनों के अन्दर इस मुश्किल का हल मौजूद है। वह यह है कि बीवी निकाह के वक़्त शौहर से तलाक़ की वकालत ले ले और निकाह का अक़्द इस तलाक़ की शर्त के साथ हो और यह शर्त अक़्द के मत्न (Text/ प्रारूप) में रख दी जाए। इस सूरत के साथ फिर कुछ दूसरे उलमा भी एक राय हो गए। इसलिए अख़बारों में भी यह सूरत छप चुकी है मगर लोग अक़्द के वक़्त तलाक़ के नाम के आने को बुरा शगुन समझते हैं और इस सूरत पर अमल नहीं करते। लेकिन बाद में आकर फरियादें करते हैं। इस अक़्द में इस शर्त को रख कर और शौहर से बीवी को तलाक़ की वकालत दिलवाकर यह भी अमली मिसाल (कार्य–उदाहरण) बनाई जा रही है। मैं दुआ करता हूँ कि ख़ुदा इस अक़्द को दोनों फरीक़ों (पक्षों) के लिए मुबारक और नेक फरमाए, मुहम्मद (स0) और उनके पाक अहलेबैत (अ0) के हक़ के (लिए)।

तलाक़ की वकालत की शर्तें

''अगर शौहर एक साल तक बिना किसी वजह के खाना–कपड़ा न दे, चाहे उस शहर में रहकर चाहे यहाँ से किसी दूसरी जगह चले जाने पर, बीवी के साथ बुरा सुलूक जैसे मार–पीट या ऐसी सख़्त बातें जो गाली गलौज में दाख़िल हो और जो ग़ैर शरीफाना (अशिष्ट) सूरत रखती है तो बीवी को हक़ (अधिकार) होगा कि वह शौहर की तरफ से वकील की हैसियत से ख़ुद या किसी दूसरे को वकील बनाकर और दो आदिल गवाहों के सामने तलाक़ का सीग़ा जारी करके तलाक़ हासिल कर ले।''

इस तरह की शर्तें पहले से दोनों तरफ से तै हो जानी चाहिएँ। यह शर्तें दोनों तरफ की मर्ज़ी से पहले से तै हो जानी चाहिएँ ताकि अक़द के वक़्त इन शर्तों का हवाला शर्ते मालूम के लफ्ज़ से दे दिया जाए।

निकाह के सीगे

औरत का वकील कहेः अनकह्तु मुवक्किलती मुवक्कि–ल–क अलल महरिल मालूमि बिश्शरतिल मालूम।

(मैं मालूम (ज्ञात) महेर पर मालूम शर्त के साथ अपनी मुवक्किला का निकाह आपके मुवक्किल से करता हूँ।)

मर्द का वकील कहेः क़बिल्तुन्निका–ह

बकिया....... पेज 17 पर

ढब। लोगों से पूछते हैं: ''क्यों तुम्हारी जानों पर तुम्हारा ज़्यादा हक़ (अधिकार, आधिपत्य) है या मेरा?'' सब एक बोल कहते हैं: ''आपका, बेशक आपका ही ज़्यादा हक़ है।'' (फिर अपने दोनों हाथों से हज़रत अली (अ0) को ऊँचा कर सामने कर कहते हैं) 'जिसका मैं मौला हूँ उसका यह अली (अ0) भी मौला* है'

वहीं कुछ शक शंका भी सर उठाती है। विरोध की आवाज़ भी जागती है। कुछ आवाज़ें रसूल (स0) से पूछती हैं 'क्या ये बात आप अपनी ओर से कह रहे हैं या खुदा की बात है' प्यारे नबी (स0) कहते हैं: 'मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं किया, न कुछ कहा। जो है वह खुदा की ओर से, उसी का हुक्म (आदेश) था जो मैंने किया, जो कहा, जो बताया' इसी में एक (हारिस बिन नोमान फ़हरी) ने यहाँ तक कह दिया कि यदि यह रसूल (स0) की ओर से न हो और खुदा की तरफ़ से हो तो खुदा मुझ पर अज़ाब डाले। ऊपर से एक पत्थर उसके सर पर आया और वह उसी समय मर गया।

(आयत उतरती है:)

'आज काफिर लोग तुम्हारे धर्म (से फिर जाने से) निराश हो गये, तो तुम उनसे तो डरो ही नहीं बल्कि मुझसे डरो, आज मैंने तुम्हारे धर्म को पूरा कर दिया और तुम पर अपनी नेमतें (अच्छाइयाँ, भलाइयाँ) समाप्त (पूरी) कर दीं और तुम्हारे (धर्म) इस्लाम को पसन्द कर लिया' (सूरा 'मायदा' आयत–3)

फिर बधाई, मुबारकबाद का शोर।

सब मुसलमान खुश, मौला मिल गया। इस्लाम प्रसन्न, रक्षक मिल गया। धर्म विश्वास खिल गया, धर्मपाल मिला, अब धर्म अनाथ न होगा। □□□

बक़िया शादी का निज़ाम.......

लिमुवक्किली अलल महरिल मालूमि बिश्शरतिल मालूम।

(मैं मालूम महेर पर मालूम शर्त के साथ अपने मुवक्किल से निकाह क़बूल/स्वीकार करता हूँ।)

औरत का वकील कहे: ज़व्वजतु मुवक्किलती मुवक्कि–ल–क अलल महरिल मालूमि बिश्शरतिल मालूम।

(मैं मालूम शर्त के साथ मालूम महेर पर अपनी मुवक्किला को आपके मुवक्किल की ज़ौजा (बीवी) करता हूँ।)

मर्द का वकील कहे: क़बिल्तुतज़वी–ज लिमुवक्किली अलल महरिल मालूमि बिश्शरतिल मालूम।

(मैं मालूम शर्त के साथ मालूम महेर पर अपने मुवक्किल की शादी (दाम्पत्य) क़बूल करता हूँ।)

तौकील (वकील होने) का सीग़ा

बेहतर यह है कि अक़्द के बाद एक शख़्स निकाह करने वाले से तौकील (वकील होने) के सीग़े को जारी करने की इजाज़त ले ले और दूसरा शख़्स औरत की तरफ से तौकील के क़बूल करने का वकील हो जाए। फिर

मर्द का वकील कहे: वक्कलतु फुलानतन फित्तलाक़ि अन्नी बिनफ्सिहा औ बिवकीलिहा बिश्शर्तिल मालूम।''

(मैं अपनी ओर से मालूम शर्त के साथ फुलानी (अमुका) को उसके द्वारा या उसके वकली द्वारा तलाक़ (के सम्बन्ध) में वकील करता हूँ।)

औरत का वकील कहे: क़बिल्तुत्तौकील लिमुवक्किलती बिश्शरतिल मालूम।

(मैं मालूम शर्त से अपने मुवक्किल की ओर से (इस तरह) वकील करने (बनाने) को क़बूल करता हूँ।) □□□

* मौला अरबी शब्द है जिसके माने हैं: मालिक, स्वामी, रखवाला, संरक्षक, साथी, साझी, दोस्त, संबन्धी, आज़ाद किया हुआ दास (गुलाम)